भाद्र कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक - १६-०९-१९६३
गाथा-१, ३, ५०१, ५०२, श्रावकाचार - ८९, २९९,
ममलपाहुड़-२९१, प्रवचन-५

उपदेशशुद्धसार में तारणस्वामी स्वयं मंगलाचरण करते हैं।

अप्पानं सुद्धप्पानं, परमप्पा विमल निम्मलं सरूवं।
सिद्ध सरूवं पिच्छदि, नमामिहं देवदेवस्य॥१॥

देखो, '**अहं**' शब्द पड़ा है। '**नमामिहं**' चौथे पद में। मैं तारणस्वामी। '**अहं**' अर्थात् मैं। '**सुद्धप्पानं**', शुद्ध आत्मामय ऐसा शुद्ध पवित्र आनन्दकन्द जो परमात्मा अरिहन्तदेव, शुद्ध पूर्ण आत्मा प्रगट हुआ है, अनन्त चतुष्टय ऐसे '**देवदेवस्य**' देव के भी देव, देवाधिदेव। ऐसे परमदेव अरिहन्त भगवान को '**नमामि**' मैं नमस्कार करता हूँ। यह तो विकल्प है। प्रथम नमस्कार में भगवान को नमस्कार किया तो पर के नमस्कार में विकल्प से बहुमान—बहुत भक्ति करके शुभभाव आया। और जो '**विमल निम्मलं सरूवं। सिद्ध सरूवं पिच्छदि,**' कैसे हैं अरिहन्त भगवान? भावमल जो रागादि पुण्य-पाप से रहित; द्रव्यमल जो ज्ञानावरणीय आदि कर्म; नोकर्म—शरीरादि। **इनसे भी परमात्मस्वरूप सिद्ध...** यह उस स्वभाव को देखते हैं। साक्षात् केवलज्ञान के स्वभाव में पूर्णानन्द को देखते हैं। अपने स्वभाव को देखते हैं, ऐसा पहले निश्चय से लिया। लोकालोक को देखते हैं, यह व्यवहार है। अपने स्वभाव में लोकालोक आ जाते हैं। तो ऐसे परमात्मा सिद्ध भगवान साक्षात् स्वभाव को देखते हैं, वे पर्याय में देखते हैं, अपनी पर्याय में। ऐसे अरिहन्त भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ की प्रमाणता दूसरी गाथा में है न।

आद्यं अनादि सुद्धं, उवइट्ठं जिनवरेहि सेसानं।
संसार सरनि विरयं, सम्म षय मुक्ति कारनं सुद्धं॥२॥

'**आद्यं**' कोई खास तीर्थंकर इस अपेक्षा से आद्य है। जैसे महावीर भगवान, ऋषभदेव भगवान। एक तीर्थंकररूप से गिनो तो आद्य है। और अनादि है। ऐसे गिनो तो अनादि तीर्थंकर हैं। समझ में आया? जैसे सिद्ध एक गिनो तो आदि है कि अभी सिद्ध

हुए, परन्तु ऐसे देखो तो अनादि सिद्ध है। पहले कभी सिद्ध हुए, ऐसा है नहीं। ऐसे **'आद्यं अनादि'** आद्य एक तीर्थंकर की अपेक्षा से आद्य है, अनादि अपेक्षा से अनादि।

'सुद्धं' ऐसे तीर्थंकर भगवान शुद्ध निर्दोष कथन ऐसा। ऐसे सिद्ध भगवान का **'उवइट्ठं जिनवरेहि सेसानं'** सर्व तीर्थंकर जिनेन्द्रों ने उपदेश किया है। जिनेन्द्रों ने अर्थात् जिनेन्द्रों ने जगत को उपदेश किया है। ऐसा सिद्ध किया है कि केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्णानन्द की प्राप्ति होने पर भी भगवान को अभी वाणी का योग है तो वाणी निकलती है। समझ में आया? पूर्णानन्द होने के पश्चात् वाणी कहाँ से आयी? परन्तु वह तो वीतराग हो गये, परन्तु वाणी तो वाणी के कारण से निकलती है। उसमें वाणी का सम्बन्ध निमित्त-नैमित्तिक है। हम बोलते हैं, ऐसा नहीं, परन्तु वाणी का इतना सम्बन्ध पूर्णानन्द का अनुभव हुआ और वाणी न हो तो भगवान ने क्या देखा और क्या जाना, यह दूसरे को समझ में नहीं आयेगा। कहो, समझ में आया?

तीर्थंकरादि प्रवाह की अपेक्षा से अनादि। अनादि प्रवाह है न तीर्थंकर का? कभी पहले तीर्थंकर थे, ऐसा है नहीं। अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... तीर्थंकर चले ही आते हैं अनन्त। महाविदेहक्षेत्र में भी अनादि से चलते हैं, यहाँ भी अनादि से चलते हैं। **'उवइट्ठं जिनवरेहि सेसानं'** यह जिनवरदेवों ने सर्व जीवों को उपदेश किया है। सर्व जीवों को। **'संसार सरनि विरयं'** संसार के भ्रमण से छुड़ानेवाले। यह सिद्धान्त। उपदेश क्या किया है? संसार अर्थात् विकार के उदयभाव जिनसे चार गति मिलती है, ऐसे उदयभाव को छुड़ाने का उपदेश भगवान ने किया है। चार गति को प्राप्त करने का उपदेश भगवान की वाणी में है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह सब तो इसे आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनादि काल से करता है। तीर्थंकर जिनेन्द्रों ने उपदेश संसार के भ्रमण से छुड़ानेवाला (किया है)। संसार सरणी... सरणी... सरणी... प्रवाह चलता है न? उससे छुड़ाने का उपदेश भगवान ने किया है। ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि जिससे भव मिले, ऐसा उपदेश भगवान की वाणी में नहीं है। भव का अभाव हो, ऐसा उपदेश वाणी में आया है। समझ में आया? पुण्य और पाप का फल स्वर्ग-

नरक है। तो वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं। वह कहीं बताना नहीं है। वह तो अनादिकाल से करता आया है। तो **संसार के भ्रमण से छुड़ानेवाला और...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसे कहते हैं? यह पंचम काल में तो है। अभी ५०० वर्ष हुए हैं। यह तो जगत के लिये भगवान ऐसा कहते हैं, ऐसा तो कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से यह उपदेश तो करते हैं। उसमें क्या हुआ? धर्म क्या आया? भगवान की वाणी में धर्म है, वह अचिन्त्य है? अपूर्व है? या कोई अनादि काल से करता है, ऐसी चीज़ है? समझ में आया? भगवान की वाणी में भगवान होने का उपदेश है। संसार का नाश करने का उपदेश है। तो जिस कारण से संसार मिलता है, वह तो पुण्य-पाप के भाव हैं। वह तो अनादि से करता आया है। उसमें कोई नवीनता नहीं है। वीतराग वह भी कहे तो संसार हो तो मुक्ति के मार्ग में अन्तर क्या रहा? समझ में आया?

तारणस्वामी कहते हैं कि भगवान ने तो '**संसार सरनि विरयं,**' का उपदेश दिया है। नाश करने का उपदेश दिया है। सेठी! '**सम्म षय मुक्ति कारनं सुद्धं।**' देखो, कर्मों का क्षय होकर मोक्ष का मार्ग मुक्ति का कारण... है न? '**मुक्ति कारनं**' है न? '**मुक्ति कारनं**' देखो, '**मुक्ति कारनं**' अपने यह चलता है मोक्षमार्ग। मुक्ति—मोक्ष परमानन्द, उसका कारण बताया है। तो यह कारण कैसा बताया? शुद्ध आत्मअनुभव। मुक्ति का कारण क्या है? शुद्ध। पहला शब्द पड़ा है। अकेला आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यमूर्ति, वह तो द्रव्य है, उसकी शक्तियाँ, वे गुण हैं और मुक्ति का कारण, वह पर्याय है। समझ में आया? '**संसार सरनि**' यह भी एक विकारी पर्याय है। और इसके नाश का उपाय कहा, वह मोक्ष का मार्ग भी एक पर्याय है।

'**मुक्ति कारनं सुद्धं।**' मुक्ति का उपाय अन्तर में शुद्ध भगवान अपना परमात्मा, उसकी तुम श्रद्धा, अनुभव करो और स्थिरता हो, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। अनन्त जिनेन्द्रों ने आद्य, अनादि तीर्थंकरों ने ऐसा कहा है। समझ में आया? देरियाजी! देखो,

संसार में भटकने का, कैसे संसार मिले ? और कैसे पुण्य मिले ? ऐसा उपदेश भगवान की वाणी में नहीं है। समझ में आया ? देखो, मंगलाचरण किया दो में। तीसरी गाथा जरा ले लेते हैं, देखो। एक ... लेना है न। और वहाँ उपदेश शुद्धसार शुरु होता है।

उवएस सुद्ध सारं, सारं संसार सरनि मुक्तस्य।
सारं तिलोय मइओ, उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि॥३॥

'**उवएस सुद्ध सारं,**' उपदेशशुद्धसार ग्रन्थ को अथवा इस ग्रन्थ में जिनधर्म का शुद्ध कल्याणमय मार्ग बतलाया है। उसे '**उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि**' भगवान परम जिनवरेन्द्रो। जिनवरेन्द्रो। जिन—समकिती को भी जिन कहते हैं। जिनवर—गणधर को कहते हैं। जिनवरेन्द्र—तीर्थंकर को कहते हैं। जिनवर इन्द्र ऐसे जिनेन्द्रों ने कौन सा मार्ग कहा ? उपदेशशुद्धसार। उपदेश का शुद्धसार भगवान ने कहा। क्या कहा ? '**संसार सरनि मुक्तस्य।' संसार के भ्रमण के छुड़ाने का यह मार्ग है।** भगवान के उपदेश में तो यह विकल्प उठता है पुण्य, दया, दान, व्रत आदि, उसे छुड़ाने का भगवान का उपदेश है। समझ में आया ? बन्धमार्ग से छुड़ाने का, मोक्षमार्ग का उपाय कराने का भगवान के उपदेश में आया है।

'**उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि**' अब '**सारं तिलोय मइओ,**' इसका अर्थ जरा इन्होंने पयोपद किया है। परन्तु इन तीन लोक में प्रदीप—दीपक समान जो भगवान ने उपदेश किया, वह तीन लोक में साररूप है। यहाँ तीन लोक में जितने पद और मार्ग, उन सबसे ऐसा अर्थ किया है। कहो, समझ में आया ? जैसे तीन लोक का दीपक उपदेश है। यह वस्तु मार्ग है, ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रों ने कहा है, ऐसा तारणस्वामी कहते हैं कि ऐसा मैं कहूँगा। मेरे घर की कल्पना की बात कहूँगा नहीं। समझ में आया ? कहो, देरियाजी ! बड़े भाई कहे, मंगलाचरण करो। मंगलाचरण किया। सवेरे लाये थे।

अब अपने चलती ५०१ गाथा। चलती है न ? देखो ! क्या कहते हैं मोक्षमार्ग ? वहाँ कहा कि भगवान ने मोक्षमार्ग कहा है, वह यह मोक्षमार्ग चलता है। ५०१ (गाथा)।

बोलंतो कम्म जिनियं, बोलन्तो सुद्ध कम्म विलयंति।
धरयंति धम्म सुक्कं, धरयंतो सूषम कम्म षिपनं च॥५०१॥

खपाना, भाई ! खपाना भाषा प्रयोग की है। **श्री जिनेन्द्र अर्हंत ने जो वाणी कही...** भगवान के त्रिलोकनाथ के मुख से जो वाणी निकली। निमित्त से कथन तो ऐसा ही आवे। '**बोलंतो कम्म जिनियं,**' जरा शीतलप्रसाद ने इसका... शब्द किया है। परन्तु इसका अर्थ कि भगवान ने जो वाणी में कहा मोक्ष का मार्ग, अपने शुद्ध स्वरूप की निर्विकल्प प्रतीति, ज्ञान, रमणता, वह वाणी में था, उसके वाच्य का उसने अनुभव किया। वह वाचक है। उसका वाचक शब्द है ? शब्दों। शब्दों में... पहले शब्दों कहा था। '**बोलंतो कम्म जिनियं,**' जिनेन्द्र अरिहन्त ने वाणी कही है। इसलिए वाणी कोई अपुरुषेय है, अद्धर से वाणी निकली है, ऐसा नहीं है। जिनवरदेव अरिहन्त को सर्वज्ञपद जो प्रगट हुआ तो ॐ ध्वनि खिरी। समझ में आया ? ॐ एक आत्मा भी है और एक ॐ यह वाणी है। दो प्रकार के ॐ हैं। ॐ के दो पद हैं। एक शब्द में ॐ है, एक ॐ के वाच्य आत्मा को भी ॐ कहते हैं। ऐसे पूर्णपद की प्राप्ति हुई तो भगवान के मुख में से ध्वनि निकली। '**बोलंतो**' जिन अर्हंत वाणी। दिव्यध्वनि है मूल तो। तो ऐसा कहा कि भगवान बोलते हैं, इसका क्या अर्थ है ? कि सर्वज्ञपद होने के पश्चात् वाणी निकलती है। वाणी निकलती है, उसका उपदेश यहाँ लिया है। समझ में आया ? कितने ही केवली मौन होते हैं। केवलज्ञान होता है, परन्तु वाणी नहीं निकलती। तो वाणी निकले बिना दुनिया को उपदेश का निमित्त नहीं मिलता। तो बोलनेवाले केवली लिये हैं।

मुमुक्षु : मूक केवली नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूक केवली नहीं।

'**बोलंतो वयणं जिनियं**' जिनेन्द्रदेव भगवान की वाणी ॐ ध्वनि खिरी सभा में। '**बोलंतो सुद्ध कम्म विलयंति**' और उस वाणी में शुद्ध स्वभाव वाच्य आया कि अहो ! तेरा परमात्मा पूर्णानन्द, तेरे गर्भ में सिद्ध भगवान स्थित हैं। तेरी शक्ति में तेरे ध्रुवपने में तो परमात्मा हैं। वह द्रव्य है। शक्तियाँ हैं, वे गुण हैं और उनका ध्यान करे, वह पर्याय है। समझ में आया ? तो कहा, कि '**सुद्ध बोलंतो**' वाणी को शुद्धरूप यथार्थ कहते हुए उसका मनन करते। मनन का अर्थ अन्तर एकाग्र होकर। एकाग्र होना, वह पर्याय है। किसमें एकाग्र होना है ? कि त्रिकाल द्रव्य और गुण जो शुद्ध स्थित हैं, उसमें एकाग्र

होना। तो पहले उसे द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान होना चाहिए। यहाँ तो खबर नहीं कि द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या? यह सर्वज्ञ वाणी के सिवाय तीन काल में दूसरे को खबर होती नहीं। वीतराग के सिवाय द्रव्य, गुण और पर्याय तीन बोल कहीं अन्यत्र हैं नहीं।

तो कहते हैं कि वीतराग की वाणी में शुद्ध स्वभाव का अनुभव आया, उसमें एकाग्र होकर '**कम्म विलयंति**' कर्म विलय हो जाते हैं। एक सिद्धान्त यह कहा कि कर्म थे, कर्म निमित्तरूप से थे। कर्म नहीं थे और अनादि से निर्मल हैं, ऐसा नहीं। अनादि से आत्मा में कर्म का निमित्त सम्बन्ध था, विकार भी था। भगवान का उपदेश आया कि अहो! विकार और कर्म का लक्ष्य छोड़ दे और तेरा स्वरूप परमानन्द मूर्ति है अखण्ड आनन्द है, उसमें तेरी दशा को जोड़ दे। वर्तमान पर्याय को उसमें जोड़ दे, इसका नाम मोक्षमार्ग है। समझ में आया? खबर नहीं होती, वाँचे नहीं, विचारे नहीं। 'वांचे पण नहिं करे विचार।' यह आता है। हमारे यहाँ दलपतराम हो गये हैं न? खबर है न? हाँ। वे 'वांचे पण नहिं करे विचार, ते समझे नहिं सघळो सार।' यह हमारे दलपतराम कवि बड़े हो गये हैं। कदड़ा कहलाते थे। कदड़ा अर्थात् कवि दलपतराम डाह्याभाई। हमारी पहली परीक्षा के समय वे थे। वे स्वयं नहीं थे परन्तु... नानाभाई तो यहाँ थे न। उनके पुत्र दलपतराम। बड़े कवि। फिर यह बात करते थे। वे स्वयं कवि थे, भाई! 'वांचे पण नहिं करे विचार, ऐ समझे नहीं सघळो सार।' शास्त्र वाँच ले, पढ़ ले परन्तु क्या कहना है, उसमें क्या मर्म है, यह समझे नहीं तो सार समझ नहीं सकता। रतनलालजी! देखो, यह समझना पड़ेगा, हों! बहियों में कितना ध्यान रखते हो? बहुत ध्यान रखते हो।

मुमुक्षु : बहियों में मूल बात है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें मूल बात है? या आत्मा में मूल बात है? पैसे हैं न पैसे, वह मूल बात है। यह (मूल बात) है।

भगवान! तेरी चीज़ में परमात्मा पड़ा है। ऐसा अखण्ड आनन्दकन्द तेरे गर्भ में—शक्ति में पड़ा है। समझ में आया? क्या कहते हैं? **धारण करो...** क्या करके धारण करो? देखो, लिया। '**धरयंति धम्म सुक्कं**' ओहो! देखो, है तो पाँचवें काल के तारणस्वामी

परन्तु कहते हैं कि धर्म—शुक्लध्यान धारण करो। ऐसा भगवान कहते हैं, देखो! **जो भव्य जीव धर्मध्यान, शुक्लध्यान धारण करते हैं...** पाठ में है न '**धम्म सुक्कं,**' '**धरयंति**' निर्मल निर्विकारी पर्याय। अल्प निर्मल वह धर्मध्यान और विशेष निर्मल निर्विकारी वह शुक्लध्यान। है तो दोनों पर्याय, परन्तु दोनों पर्याय अविकारी अरागी पर्याय है। समझ में आया? देखो, '**धरयंति धम्म सुक्कं,**' धर्मध्यान और शुक्लध्यान पर्याय में शुद्ध अखण्डानन्द में एकाकार होकर, पुण्य-पाप के विकल्प का लक्ष्य छोड़कर चैतन्य की सम्यग्दृष्टि स्वयं करना, उसमें ज्ञान करके रमना, उसका नाम धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान कोई विकल्प और शुभराग है, वह धर्मध्यान—शुक्लध्यान है ही नहीं। समझ में आया?

'**धरयंतो सूषम कम्म षिपनं च**' देखो भाषा! कहते हैं कि शरीर तो ठीक, परन्तु अन्दर सूक्ष्म परमाणु के कर्म बँधे हैं। आठ कर्म सूक्ष्म हैं। **ऐसा शुद्ध ... धरने से, शुद्ध ध्यान को धरने से सूक्ष्म कर्म क्षय हो जाता है।** यह सूक्ष्म कर्म विलय हो जाता है, नाश हो जाता है। तो उस कर्म में ऐसी सामर्थ्य है कि स्वयं के कारण से यहाँ ध्यान करे, नाश करने की पर्याय उसकी सामर्थ्य से खिर जाता है। सूक्ष्म कर्म खिर जाता है, ऐसा शब्द लिया है। सूक्ष्म रजकण आठ कर्म हैं सूक्ष्म। तो ... है न? आठ ... कर्म में। स्थूल, समझ में आया? कर्कश, भारी, हल्का, कोमल और कठोर, तो उसमें स्पर्श नहीं। चार सूक्ष्म स्पर्श है। कर्म में चार सूक्ष्म स्पर्श है। ठण्डा, गर्म समझ में आया? स्निग्ध और रूक्ष। ये चार स्पर्श कर्म में हैं। और आठ स्पर्श है यह शरीरादि में चार-चार स्पर्श विशेष है। उसमें तो सूक्ष्म चार स्पर्श है। तो कहते हैं कि ऐसे सूक्ष्म कर्म का शुद्ध धर्मध्यान की पर्याय द्वारा क्षय—नाश होता है। दूसरे कोई अपवास-बपवास और व्रत के विकल्प से कर्म का नाश कभी होता नहीं। समझ में आया? विकल्प उठे कि मैं ऐसा करूँ और वैसा करूँ, वह तो शुभराग है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। सूक्ष्म कर्म का नाश तो धर्मध्यान से होता है। कहो, मोतीरामजी! कठिन बात परन्तु यह सब।

दो नय भी चाहिए न! निश्चय और व्यवहार। व्यवहार जाननेयोग्य है और निश्चय अन्दर आदरनेयोग्य है। अन्दर में महाव्रत आदि के विकल्प आते हैं, परन्तु वह राग है, बन्ध का कारण है। मुक्ति का कारण नहीं है। भगवान आत्मा का निर्विकल्प

ध्यान, श्रद्धा, ज्ञान और रमणता एक ध्येय लगाकर अन्तर में लीन होना, ऐसा भगवान कहते हैं। भगवान ने ऐसा उपदेश दिया कि उससे कर्म खिरते हैं। उस उपदेश को शुद्ध उपदेश कहा जाता है। दूसरा उपदेश दे कि पुण्य से (कर्म का क्षय) होता है, वह अशुद्ध उपदेश मिथ्यादृष्टि का है। वह वीतराग की वाणी का और वीतराग का उपदेश तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : उपवास तो थोड़े.... करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा कौन करता है? राग मन्द किया, वह करता है। दूसरा क्या किया तूने? यह राग मन्द है, पुण्यबन्ध है। उसमें क्या है? स्वभाव की अन्तर दृष्टि और लीनता बिना निर्जरा और संवर कभी तीन काल में होते नहीं। वह तो जानने के लिये पूछते हैं, हों! सेठी! अब तो उसे पक्का हो गया है। पहले था। पहले बहुत गड़बड़ थी। पहले तो खलबलाहट थी आये तब। आये तब था, ऐसा कहा, मैंने भी ऐसा कहा। आये तब खलबलाहट थी। भाई! सुन... सुन...!

५०१। यह वाणी-वाणी कहा न? वाणी का तो निमित्त है। समझ में आया? वाणी की ओर लक्ष्य रहे, तब तक तो शुभविकल्प है। क्या कहते हैं? वाणी की ओर लक्ष्य रहे कि भगवान ऐसा कहते हैं... ऐसा कहते हैं... ऐसा कहते हैं... ऐसा कहे... तब तक तो शुभराग है। परन्तु उसे छोड़कर उन्होंने कहा, ऐसा आत्मा में... यह आया है, भाई, हों! यह ममलपाहुड़ लो, देखो! शब्दों को छोड़कर। २५१ पृष्ठ पर है। ममलपाहुड़ देखो। तुमको यहाँ दिया है। २९१। ... है उसमें? २४। हाँ ठीक वहाँ है। २४-२४। २९१ में २४ बोल है न। २४वाँ बोल नहीं? देखो। ... जो कोई शब्दों को छोड़कर। शब्द के ऊपर लक्ष्य रहे, तब तक तो विकल्प है। शोभालालजी! यह तुमने अभी तक पैसे-बैसे में ध्यान विचार नहीं किया तुमने। जैन वाणी को नमस्कार! जय भगवान... जय भगवान...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल ज्ञान नहीं तब तो ऐसा कहते हैं। जड़ से ज्ञान होता है? वह तो परद्रव्य की पर्याय है। परद्रव्यनय लक्ष्यरूप रहे और अपने में जो ज्ञान का

उघाड़ हुआ, वह भी स्वयं से है, परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान है, स्वलक्ष्यी ज्ञान—सम्यग्ज्ञान नहीं है। क्या कहते हैं?

फिर से। देखो यहाँ कहा न? .... **शब्दों को छोड़कर शब्दों से अतीत आत्मा का अनुभव करता है।** समझ में आया? वाणी ऊपर यह वाणी, यह वाणी, यह दोपहर में नहीं चलता? कि यह वाणी ऐसा कहती है, यह वाणी ऐसी है। यह तो उसका परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य है। तब तक तो विकल्प—शुभराग है, शुभराग है। पुण्यबन्ध का कारण है। अबन्ध परिणाम नहीं। जब तक शब्द का लक्ष्य रहे, तब तक शुभराग है। वह लक्ष्य और राग को छोड़कर अपने ज्ञायक सन्मुख का स्वलक्ष्यी ज्ञान-दर्शन करे, तब पर्याय में निर्मलता प्रगट हो, उसका नाम भगवान मोक्षमार्ग फरमाते हैं। सेठी! देखो, ... **छोड़कर शब्दों से अतीत आत्मा का अनुभव करता है। वह चारित्र के विकल्प से शून्य होकर...** कहते हैं न .... दूसरा शब्द। चारित्र के विकल्प से शून्य। मैं महाव्रत पालता हूँ, मैं अहिंसा पालता हूँ, वह विकल्प है। उससे शून्य होकर अन्दर स्वरूप में रमणता करना, यह उसका नाम भगवान (चारित्र कहते हैं)। इस ममलपाहुड़ का यह अर्थ है। अमलसार। ममल अर्थात् अमलसार। मल बिना का सार, उसे भगवान ने कहा है। देरियाजी! देरियाजी ध्यान तो बराबर रखते हैं। समझ में आया?

जिनेन्द्र परमात्मा हो जाता है। देखो, लो! .... अपना शुद्ध आत्मा वाणी से कहा, उसे लक्ष्य में लेना, परन्तु लक्ष्य जब तक परलक्ष्यी लक्ष्य है, तब तक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान नहीं। यह दोपहर में नहीं चलता? मैं बद्ध हूँ, अबद्ध हूँ—ऐसा विकल्प भी सम्यग्दर्शन नहीं। यह वाणी तो परचीज़ है। तो कहा कि छोड़कर। समझ में आया? लक्ष्य छोड़ दे। शब्दों का लक्ष्य छोड़ दे, जिनवाणी का लक्ष्य छोड़ दे। देव-गुरु-शास्त्र भी परद्रव्य हैं। उनकी भक्ति का राग आता है, परन्तु उसे छोड़ दे। लक्ष्य में से छोड़ दे। लक्ष्य में से छोड़े बिना अपने स्वलक्ष्य की प्रतीति नहीं होती। सच्चिदानन्द मूर्ति की प्रतीति कभी होती नहीं। समझ में आया? शून्यभाव और है न सब? **आत्मज्ञान को प्रगट करके जो शून्यभाव में समा जाता है।** देखो, शून्यभाव में समा जाते हैं। क्या? शून्यभाव त्रिकाली स्वभाव। उसमें समा जाते हैं, वह पर्याय। शून्यभाव। उसमें विकल्प नहीं, राग नहीं, दया, दान, विकल्प वृत्ति नहीं, ऐसा शून्यभाव अपना त्रिकाल स्वभाव।

उस शून्यभाव में समा जाना अथवा एकाकार होना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। उसका नाम अमलसार है—ममलसार है। बाकी मल का सार है। समझ में आया?

और २४वाँ लिया है न? उसके पहले भी आया देखो एक १५वाँ। २९० में आया।

.....

जो कोई शब्दों को छोड़कर शब्द से अतीत आत्मा में रमण करता है। १५ में है। पहले वह २४वाँ लिया था। आत्मा क्या शब्द के लक्ष्य से प्राप्त होता है परलक्ष्य से? वह तो परद्रव्यानुसारी वृत्ति हुई। समझ में आया? भगवान की वाणी सुनता है, गणधर सुनते हैं, परन्तु है विकल्प। इन्द्र सुनते हैं, वह परलक्ष्यी विकल्प। उस ओर का लक्ष्य छोड़कर जितने स्वभाव सन्मुख की एकाग्रता होती है, उसे भगवान ने मोक्षमार्ग का उपदेश कहा है। उसे मोक्षमार्ग कहा है। कठिन है। जगत ने कभी सुना ही नहीं। उल्टे-उल्टा उदाहरण—दृष्टान्त मारकर उल्टे-उल्टा। ऊंधा को क्या कहते हैं? उल्टा-उल्टा। वीतरागमार्ग से उल्टा कहे और हम वीतरागमार्ग कहते हैं। वीतरागमार्ग में तो राग का अभाव बताते हैं कि वीतराग राग का सद्भाव बताते हैं? समझ में आया?

तो कहते हैं कि उस वाणी में कहा हुआ भाव, वह अपने स्वरूप के लक्ष्य से अन्दर समझकर। भाव क्या कहा था? लो, एक बात रह गयी। ... भाई! भगवान की वाणी में यह आया था। क्या आया था? कि तू तेरा शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु का ध्यान कर। यह वाणी में आया था, ऐसा किया। वाणी में यह आया था। धर्म और शुक्लध्यान मोक्ष का मार्ग, ऐसा वाणी में आया था। समझ में आया? मोक्षमार्ग है न? यह मोक्षमार्ग की बात चलती है। ऊपर मोक्षमार्ग का चलता है अपने। आज तो पाँचवाँ दिन है। पाँचवाँ है या नहीं? देखो, क्या कहते हैं? भगवान की वाणी में ऐसा आया कि धर्मध्यान, शुक्लध्यान। आया ऐसा किया। स्वरूप में ध्यान अन्तर एकाग्रता से उससे कर्म नाश होते हैं, ऐसा भगवान की वाणी में आया था। ऐसे ध्यान से कर्म खिरते हैं। वाणी का सार ऐसा धर्मध्यान जिसने किया, उसे कर्म खिरते हैं, दूसरे को खिरते नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। सम्यग्दृष्टि का शुभ, वह पुण्यबन्ध का कारण है। यह आयेगा। अभी सलंग पुस्तक होती है न। बम्ब (ढ़ेर) लगेगा बड़ा। सेठी! कलशटीका अभी बाहर प्रकाशित होगी। तीन हजार पुस्तकें बाहर प्रकाशित होनेवाली हैं। बहुत सरस अध्यात्म। पुरानी भाषा ढूंढ़ारी, उसे सुधारकर। उसमें हमारे हिम्मतभाई सुधारे तो फिर... कहो, समझ में आया? कलशटीका। यह अमृतचन्द्राचार्य के कलश हैं न? उनकी पुरानी टीका है ढूंढ़ारी भाषा। उसमें से समयसार नाटक बनारसीदास ने बनाया है। वह ऐसी सरस है। ऐसा अध्यात्म है (कि) गोली मार दी एकदम। राजमल की टीका। सम्यग्दृष्टि हो या अज्ञानी हो, जिसे शुभभाव विकल्प आवे, उन सबको पुण्यबन्ध का कारण है, वह धर्म-बर्म नहीं। अभी कितने ही ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि का शुभभाव तो कुछ निर्जरा में है। कुछ सहायता करता है संवर में। धूल में भी नहीं, सुन तो सही। समझ में आया?

मुमुक्षु : परलक्ष्यी भाव भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी उसमें रिकॉर्डिंग में ऐसा लिखा है। शुभभाव में मात्र बन्ध है, ऐसा नहीं, थोड़ा अबन्ध है। सब झूठ है। ऐसी बात ही नहीं। तीन काल, तीन लोक में 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' परमार्थ का पंथ दो, तीन, चार होते नहीं। किसी को राग से भी धर्म हो, किसी को अराग से धर्म हो, किसी को पुण्य से धर्म हो, किसी को अन्तर पवित्रता से धर्म हो, ऐसा मार्ग भगवान का है नहीं। आता अवश्य है, राग आता है। यह नमस्कार नहीं किया पहले?

मुमुक्षु : यह तो लिखने का भाव है यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखने का भाव हुआ, वह क्या है? शुभभाव है। यह पुस्तक लिखने का भाव है, वह शुभराग है। वह कोई संवर-निर्जरा नहीं। व्यवहार आता है, होता है। यह लिखने का लक्ष्य है, वहाँ शुभराग है, विकल्प है, पुण्य है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भाई! यह विकल्प है, हमारा स्वरूप नहीं। हम लिखते नहीं, हमारी क्रिया नहीं। यह हमारी क्रिया है, ऐसा तुम मानना नहीं। समझ में आया?

अहो! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा परमेश्वर देखो। ऐसा मार्ग है। उसमें कुछ भी फेरफार करना, वह निगोद में जाने की चीज़ है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त-अनन्त हुए, अनन्त वर्तमान में संख्यात केवली महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र यहाँ सिद्ध किया था, भाई! वहाँ किया है। महाविदेह कुछ किया है या नहीं? ममलपाहुड़ दूसरे भाग में है। दूसरा भाग है? देखो २७१। यह तो अपने महाविदेह सिद्ध करना है, हों! लोग कहते हैं कि ऐसा नहीं और वैसा नहीं। देखो, २७१ पृष्ठ। १०-११वाँ पद है। क्या है यह? चौदह पूर्व रासा। चौदह पूर्व रासा, गाथा १७४९ से १७६७। देखो!

जं नंत उवन हिययारं, सह रमन नंत सहयारं।
भय सल्य संक सुइ विलयं, तं नंत धर्म सिद्धि मिलियं॥१०॥

यह एक पद हुआ, उसकी व्याख्या। '**जं नंत उवन हिययारं,**' हितकारी अनन्त ज्ञान का प्रकाश हुआ है भगवान को। हितकारी केवलज्ञान का प्रकाश हुआ। **उसमें रमण कर अनन्त सहकारी गुण प्रगट होते हैं।** उसमें रमण करनेवाले भी अनन्त-अनन्त ज्ञानस्वभाव में रमणता करते हुए अनन्त गुण प्रगट होते हैं। **उनके भय, शल्य शंका बिला गयी है।** सम्यग्दृष्टि को भी अन्दर रमणता करने से भय, शल्य और शंका नाश पा जाती है। सेठ! समझ में आया? भय, लज्जा, गारव से करना नहीं, उसका इनकार करते हैं। कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को बाहिर् लज्जा-गारव से भी नमन करना नहीं। यह कहीं है अवश्य भाई इसमें भी, हों! कहीं है अवश्य। डाला है कहीं? है अवश्य कहीं। सबने अलग-अलग गाथा लिखी हो। क्या कहते हैं?

अनन्त स्वभाव के धारी अर्हंत जिन सिद्धभाव को प्राप्त हो जाते हैं। लो! **ऐसा भय, शल्य त्यागकर अपना स्वरूप में अखण्डानन्द में रमते अनन्त स्वभाव के अरिहन्त सिद्ध हो जाते हैं।** महाविदेह। देखो! महाविदेह है। महाविदेहक्षेत्र अभी है। तीर्थंकर विराजते हैं। कोई गप्प नहीं है। कोई कहे कि इतनी जमीन है, इतनी है, धूल है और... सेठ! देखो, तारणस्वामी कहते हैं। शास्त्र में तो है, उसका अनुसरण करके लिखा है। क्या कहा? देखो!

'जं दिप्ति दिस्टि सह रूवं,' श्री अर्हंत का स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन

स्वरूप है। 'विन्यान विंद सुइ सुरयं।' अपने ज्ञान में मग्न हैं भगवान। **सूर्य समान प्रभावान है।** सूर्य समान तो जड़ की उपमा है, हों! **'सुरयं'** है न? निर्मल सूर्य समान चैतन्य सूर्य है, चैतन्य सूर्य है। **'जं विद्यमान जिन उत्तं,'** ओहो! जैसे विद्यमान भगवान विराजते हैं। वर्तमान तीर्थंकरदेव महाविदेहक्षेत्र में (विराजते हैं)। त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में करोड़पूर्व का आयुष्य है। पाँच सौ धनुष का देह है और करोड़ों-अरबों वर्षों से विराजमान हैं। मुनिसुव्रत भगवान के समय में मुनिपना लिया था, अभी है। आगामी चौबीसी में बारहवें-तेरहवें तीर्थंकर होंगे, तब मुक्ति प्राप्त करेंगे। तब तक... चौरासी। श्वेताम्बर में चौरासी (लाख पूर्व)। यहाँ करोड़ पूर्व लिखा है। यहाँ तो शब्द शब्द में अन्तर है। श्वेताम्बर में चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ मोक्ष जायेंगे। यहाँ बारहवें तीर्थंकर, तेरहवें तीर्थंकर जब होंगे आगामी चौबीसी में, तब मोक्ष जायेंगे। तीर्थंकर भगवान सीमन्धर भगवान। सीमन्धर भगवान यह चलते हैं, देखो! **'जं विद्यमान जिन उत्तं,'** है या नहीं इसमें? ममलपाहुड़ दूसरा भाग है। दूसरा भाग, दूसरा भाग। समझ में आया? विद्यमान भगवान तीर्थंकर विराजते हैं। **श्री वर्तमान विदेहक्षेत्र में रमण करनेवाला सीमन्धर आदि तीर्थंकरों ने कहा है। ऐसा वर्तमान तीर्थंकरों कहते हैं...** कि ऐसे सिद्ध भगवान और अरिहन्त अपने स्वरूप में रमणता करते हैं। यह भी खबर नहीं तुमको। हाथ ऐसा करते हैं, भाई। तुम्हारी दलाली करते हैं।

त्रिलोकनाथ... देखो, यहाँ कहा कि **अर्हंत का स्वभाव और ज्ञानस्वरूप विज्ञान ज्ञान सूर्य समान प्रभावान ऐसा वर्तमान विदेहक्षेत्र में रमण करनेवाला सीमन्धर आदि कहा, उसकी वाणी कहे अनुसार सिद्ध स्वभाव में लीन है।** भगवान ने कहा, ऐसा कहते हैं। कोई कहे कि यह भगवान वर्तमान में कहते हैं, ऐसे ही सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में लीन हैं। सिद्ध भगवान सिद्ध किये, तीर्थंकर सिद्ध किये, वाणी सिद्ध की, महाविदेहक्षेत्र सिद्ध किया। विद्यमान तीर्थंकर विराजते हैं—बीस तीर्थंकर। यह इतना क्षेत्र नहीं। इतने में यह है। भूगोल-खगोल की कुछ शंका हो। कुछ भान नहीं। श्रद्धा

क्या चीज़ है। अभी व्यवहारश्रद्धा की खबर नहीं। तो कहते हैं कि देखो! तारणस्वामी समाज के कहलाये और तारणस्वामी कहते हैं, उनकी आज्ञा को मानना नहीं, समझना नहीं। ऐई! शोभालालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। पति की ओढ़नी ओढ़ना। ओढ़णा समझते हो? साड़ी। पति की आज्ञा नहीं मानना। क्या कहते हैं? सर्व जिनेन्द्रों ने ऐसा कहा कि जैसी वाणी भगवान के मुख में से अभी निकलती है, वैसे ही सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में रमते हैं। वे भी रमते हैं, यह भी रमते हैं। वाणी निकली है, इतना शरीर में अन्तर है, दूसरा कोई अन्तर नहीं। समझ में आया?

उनकी वाणी के अनुसार वे सिद्ध स्वभाव में लीन है। लो! अपने तो यह कहना था। यहाँ तो महाविदेहक्षेत्र जरा विद्यमान तीर्थंकर विराजते हैं। बहुत काल से विराजते हैं। उन बीसवें मुनिसुव्रत भगवान जब यहाँ हुए, तब तो भगवान ने दीक्षा ली है, केवलज्ञान प्राप्त हुए। केवलज्ञानी विराजते हैं। त्रिकाल ज्ञान में विराजते हैं अभी। वे करोड़ों... कुन्दकुन्दाचार्य गये थे दो हजार वर्ष पहले संवत् ४९। तब भी केवलज्ञान में थे। इससे पहले अरबों वर्ष केवलज्ञान में थे। अभी अरबों वर्ष केवलज्ञान में रहेंगे शरीर (सहित) में। यह विद्यमान तीर्थंकर विराजते हैं, उनकी वाणी ऐसी है। देखो, तारणस्वामी ऐसा तो सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निकाला अलग-अलग निकालकर इन सेठ के कारण से है, भाई! सेठ कहते हैं कि हमारा करो भाई! कुछ वाँचते हैं। समझ में आया? आहाहा! फिर क्या आया था वह? लज्जा। किसमें? श्रावकाचार में। ८९ गाथा है। देखो! श्रावकाचार में श्रावक को कहा है। यथार्थ दृष्टि जिसकी हो...

कुगुरुं संगते जेन, मानते भय लाजयं।
आसा स्नेह लोभं च, मानते दुर्गति भाजनं॥८९॥

शोभालालजी! यह घर की बात बताते हैं।

कुगुरुं प्रोक्तं जेन, वचनं तस्य विस्वासतं।
विस्वासं जेन कर्तव्य, ते नरा दुष भाजनं॥९०॥

देखो, **जो कोई कुगुरु की संगति करते हैं...** सत्य दृष्टि का भान नहीं, कुलिंग लेकर पड़ा है, सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। और उससे विरुद्ध वीतरागमार्ग से विरुद्ध प्ररूपणा करता है, विरुद्ध वेश धारण करता है। ऐसी संगति करता है **और भय, लाज, आशा, प्रेम, लोभ के कारण...** देखो, यह सब तुमको लागू पड़ता है। है न! क्या है ? लाओ। सेठ को बुलाओ। कुछ देंगे हजार-दो हजार। देरियाजी कहते हैं। मोभ हो न मोभ ? अग्रसर है न भाई! क्या कहते हैं ? देखो, तारणस्वामी कहते हैं कि दुनिया के भय से... क्या करें ? पुत्र-पुत्री का विवाह नहीं होगा, अकेला पड़ जाऊँगा। ऐसा भय। लज्जा... भाई! मैंने अभी तक सब किया है। अब छोड़ूँ तो मेरी इज्जत नहीं रहेगी। लज्जा। **आशा...** मेरी कोई आशा, बड़ा उसका सहकार मिले, अपने साथ रहे, ऐसी आशा रहे और **प्रेम...** प्रेम करता है कुगुरु का। और लोभ के कारण से। इतने बोल लिये हैं मूल गाथा में।

उनकी प्रतिष्ठा करते हैं... देखो, **मानते...** बहुमान करते हैं। **वे मनुष्य... 'दुर्गति भाजनं' कुगति के पात्र हैं...** समझ में आया ? श्रावकाचार में बताया है। यह ८९ गाथा है। ८९। लिख लेना। अपने महेन्द्रभाई है न। लिख लेना। पश्चात् **जो मनुष्य दुर्गतिपात्र है... कुगुरु के द्वारा जो कुछ कहा गया, यह वचन विश्वास करनेयोग्य नहीं।** अज्ञानी अपनी कल्पना से कहता है। त्रिलोकनाथ वीतरागमार्ग जो अनादि परम्परा से चला आता है, उससे विरुद्ध कहते हैं, उसका विश्वास करनेयोग्य नहीं। और जो कोई उनका विश्वास करता है, वह **'ते नरा दुष भाजनं'** वह दुर्गति का पात्र है। लो, यह तो जरा बात (ली है)। थोड़ा आवे तो सब आवे न।

लो, एक गाथा हुई ५०१। दूसरी गाथा।

पीओसि परम सिद्धं, पीवंतो ममल ज्ञान सुद्धं च।
रहिओ संसार सुभावं, रहिओ सरनि कम्म गलियं च॥५०२॥

अकेली शुद्धता की धुन ही लगी है। इसलिए बारम्बार उसी प्रकार के शब्द

निकल गये हैं, निकल गये हैं। **श्री सिद्ध भगवान ने परमसिद्धस्वरूपी अमृत का पान किया है।** यह '**पीओसि परम सिद्धं**' अमृत। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, मोक्षमार्ग की क्रिया करते-करते परम आनन्द की प्राप्ति हुई। मोक्षमार्ग में भी अन्दर निर्विकल्प का अनुभव करना, पीना, वही मोक्षमार्ग है। अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान निर्मल करके आत्मा के निर्मल सुधारस का अनुभव पीना, उसका नाम भगवान मोक्षमार्ग कहते हैं। यह मोक्षमार्ग चलता है न? मोक्षमार्ग अधिकार है। और उसके फलरूप से सिद्ध भगवान पूर्णानन्द अमृत पीकर हुए हैं।

'**पीवंतो ममल ज्ञान सुद्धं**' अब यह क्या? पान कहा तो कोई भी पानी होगा? कहते हैं कि भाई! सुन तो सही! स्वरूप में अमृतरस पड़ा है, अन्तर स्वभाव में अमृतरस पड़ा है। वह गुणरूप है, शान्तरस, अकषायरस, वीतराग विज्ञानरस। स्वरूप में रस पड़ा है। गुप्त चमत्कार अन्दर पड़ा है। उसकी अन्तर एकाग्रता करने से जो अमृत पीते हैं, उसे निश्चय मोक्षमार्ग भगवान ने कहा है। उसे शुद्ध उपदेश का नाम देते हैं। निर्विकल्प अनुभव के अतिरिक्त, राग के कारण से कोई मोक्षमार्ग बतावे तो वह शुद्ध उपदेश है नहीं, भगवान का उपदेश नहीं। समझ में आया? '**पीवंतो विमल ज्ञान सुद्धं' जो कोई आत्मानन्दरूपी अमृत को पीते हैं...** विमल ज्ञान है न? **उनके निर्मल शुद्ध ध्यान की सिद्धि होती है।** लो! आत्मानन्द निर्विकल्प अनुभव को पीते हैं, उन्हें निर्मल शुद्ध ध्यान अर्थात् एकाग्रता, निर्मल पर्याय प्रगट होती है।

'**रहिओ संसार सुभावं,**' देखो, भाषा ली है। यह संसार भी एक विभाव भी एक स्वभाव है। क्या कहा? यह स्वभाव शब्द पड़ा है। यह पुण्य और पाप विकल्प जो उठता है उदयभाव, वह संसार स्वभाव है। जिसे विभाव कहते हैं। वह विभाव भी संसार स्वभाव है। आहाहा! भाई! स्वभाव तो शुद्ध को कहा जाता है। अब सुन तो सही! यह संसार स्वभाव है। जितने पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप की वृत्ति उठती है, वह उदयभाव है, वह संसार स्वभाव है, वह मोक्षस्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? '**संसार सुभावं**' इनकी भाषा से बात की है। परन्तु मूल तो संसार विभाव है, उससे '**रहिओ**' वह संसारभाव, विकारभाव, ऐसे आत्मा का, अमृत का ध्यान करता है,

उसका विकारभाव नाश होता है।

'रहिओ सरनि कम्म गलियं च' यह **'रहिओ सरनि' 'सरनि'** अर्थात् संसार। संसार मार्ग से **'रहिओ'** छूट जाता है और कर्म गलते जाते हैं। यह विकार की पर्याय छूट जाती है और कर्म नाश पाते हैं। दो प्रकार हुए। विकार पर्याय, स्वभाव का निर्मल ध्यान एकाग्र श्रद्धा-ज्ञान से विभाव पर्याय गलती है और कर्म भी (नाश पाते हैं)। विभाव भावकर्म है; कर्म द्रव्यकर्म है। दोनों नाश पाते हैं। समझ में आया? दो गाथायें हुईं।

५०३ (गाथा)।

दिस्टंति तिहुवनग्गं, दिस्टंतो ममल कम्म मुक्कं च।
जिनियं च तिविहि कम्मं, जिनयंतो अनिस्ट कम्मं बंधानं॥५०३॥

अहो! **भव्य जीव! तीन लोक के अग्रभाग में विराजित सिद्ध भगवान।** दो बातें सिद्ध कीं। एक तो सिद्ध भगवान हैं, कहाँ विराजते हैं? तीन लोक के अग्र भाग में। क्षेत्र भी सिद्ध किया। समझ में आया? **'तिहुवनग्गं'** तीन भुवन के अग्र में विराजते हैं। अनन्त सिद्ध विराजते हैं। जहाँ एक सिद्ध हैं, वहाँ अनन्त हैं। अनन्त हैं, वहाँ एक है और एक है, वहाँ अनन्त हैं। कोई मिलते नहीं कोई। 'ज्योत में ज्योत मिलाई' ऐसा नहीं। मूढ लोग ऐसा मानते हैं। प्रत्येक सिद्ध वहाँ (भिन्न-भिन्न विराजते हैं)। मोतीरामजी! भाई! कड़क भाषा है न! क्या करें? लोग ऐसी गड़बड़ कर देते हैं कि मोक्ष—सिद्ध होने के पश्चात् ज्योति में ज्योति मिल गयी, एक सिद्ध में दूसरे सिद्ध मिल गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मिलती है। क्या सत्ता का नाश होता है? अनादि-अनन्त **'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'** समझ में आया? ऐसा भी एक शब्द है न कहीं? ... ऐई! उत्पाद-व्यय कहीं है न। ध्रुव का कहीं है अवश्य। देखो, इसमें एक दूसरी रीति से बात की है।

नादु न विंदु नकारं, नहि उप्पत्ति षिपति सुधं।
सुधं सुध सहावं, सुधं तियलोय मंत निम्मलयं॥७७५॥

शुद्धनिश्चयनय से जीव में न तो कोई शब्द है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द में कोई

शब्द नहीं। शब्द है ही नहीं उसमें। **न कोई चिह्न है।** चिह्न-बिन्दु। **जिससे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके। इसमें न कोई क्रिया है।** हलन-चलन आदि क्रिया आत्मा में नहीं। वह जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं। **नहीं उत्पत्ति...** उसमें निश्चय से कोई उत्पत्ति नहीं। दूसरी कोई उत्पत्ति नहीं। अपनी निर्मल पर्याय की उत्पत्ति, इसके अतिरिक्त दूसरी उत्पत्ति नहीं। **न कोई व्यय है।** दूसरी चीज़ आकर व्यय हो जाये, ऐसा नहीं। अपनी निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व की निर्मल पर्याय का व्यय और निर्मल पर्याय की उत्पत्ति (होती है)। अन्य निर्मल की उत्पत्ति और पूर्व की निर्मल पर्याय का व्यय। दूसरी कोई पर्याय आकर व्यय और उत्पत्ति हो, ऐसा है नहीं। है देरियाजी!

वह तो ध्रुव शुद्ध है। लो! उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों आ गये। दूसरे उत्पाद-व्यय नहीं, परन्तु अपना उत्पाद-व्यय है। ओर त्रिकाल में तो उत्पाद-व्यय नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। एकरूप ध्रुव में तो उत्पाद-व्यय नहीं। उत्पाद-व्यय तो पर्याय में है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञेय पर्याय के ज्ञान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान-बान... वह तो ज्ञान की अपनी पर्याय उत्पन्न होती है, ज्ञेय की पर्याय नहीं। वह तो ज्ञान की पर्याय अपनी होती है केवलज्ञानरूप, उसकी पर्याय एक समय में होती है और दूसरे समय में जाती है। क्योंकि पर्याय है न, गुण नहीं। गुण सदृश्य कायम रहते हैं। पर्याय एक समय रहती है। पर के कारण से नहीं। ज्ञेय के कारण से नहीं, अपने कारण से। **'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'** प्रत्येक द्रव्य का **'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'** लक्षण और सत् द्रव्य लक्षण। अपने कारण से उत्पाद-व्यय है, पर के कारण से नहीं। भारी कठिन बात। जगत को परालम्बी बात, परालम्बी बात (रुचती है)।

मुमुक्षु : बहुत मीठी लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठी मानी है अनादि से। मानी है, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : मृदु....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मृदु। भाई कहते हैं थे सवेरे में। देरियाजी कहते थे मृदु

लगती है दूसरे के मीठे वचन। यह कड़क लगते हैं। सुना नहीं। जिनवरदेव वीतराग कहते हैं, अपनी पर्याय में केवलज्ञानादि उत्पन्न हों, वह भी एक समय की पर्याय है। पूर्व की पर्याय का व्यय होता है, ध्रुव में कुछ है नहीं। देखो। ध्रुव शुद्ध।

वह परम शुद्ध स्वरूप है। 'सुधं तियलोय मंत निम्मलयं' निश्चल तीन लोक मात्र असंख्यात प्रदेशी वह सर्व कर्ममल रहित है। कहो, समझ में आया? सर्व को जाननेवाला है। तीन लोक के जितने प्रदेश हैं न, उतने असंख्य प्रदेश अपने आत्मा में है। समझ में आया? तीन लोक है न चौदह ब्रह्माण्ड? उसमें जितने आकाश के प्रदेश हैं न, उतने एक जीव के प्रदेश हैं। एक जीव के इतने असंख्य प्रदेश हैं। सब निर्मल हैं। सिद्ध भगवान तो पूर्ण निर्मल हो गये। पूर्ण निर्मलानन्द। क्या है यह? ज्ञानसमुच्चय। समझ में आया? पूर्ण निर्मल हो गये हैं।

द्रव्य की अपेक्षा वह न उपजता है न विनशता है, वह सदा ही अविनाशी व स्फटिक मणिमय शुद्ध है। इसका स्वभाव रागादि भावों से परम वीतराग है। देखो, लिखा है भाई ने, हों! अन्दर **यह निश्चय से लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है...** शीतलप्रसाद ने। अब यह भी खबर नहीं होती। सिद्ध भगवान असंख्य प्रदेशी क्या? अरिहन्त भगवान असंख्य प्रदेशी क्या? प्रदेश अर्थात् क्या? कहो, सेठ! प्रदेश अर्थात् क्या? कहो तुम। आत्मा है न, वैसे यह एक परमाणु—पॉइन्ट है न यह। अन्तिम टुकड़ा, हों! यह (स्कन्ध) कहीं मूल चीज़ नहीं है। अन्तिम टुकड़ा जितने में रहे, उतनी जगह को प्रदेश कहते हैं। ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी चौड़ा है। असंख्य प्रदेशी चौड़ा है। तो यहाँ आचार्य कहते हैं... समझ में आया? ज्ञानसमुच्चयसार में तारणस्वामी कहते हैं कि **'सुधं तियलोय मंत निम्मलयं'** तीन लोक के जितने प्रदेश असंख्यात हैं आकाश के, उतने मेरे असंख्य प्रदेश, सिद्ध के अरिहन्त के इतने हैं। सर्व असंख्य प्रदेश निर्मल हो गये हैं। प्रदेश असंख्य हैं, गुण अनन्त हैं। एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। ऐसा अनन्त व्यापक है। सोने की चैन नहीं होती? साँकली को क्या कहते हैं? जंजीर। जंजीर नहीं। चैन। चैन में तो मकोड़े होते हैं न। मकोडा कहते हैं? क्या कहते हैं? कड़ी-कड़ी। एक-एक कड़ी तो ऐसे-ऐसे लगी हुई है। ऐसा यहाँ नहीं। यहाँ तो एक... एक... एक... एक... एक... एक... प्रदेश है। तो कड़ी को प्रदेश कहना, सांकल को आत्मा कहना

और उसमें जो सोना है, उसको गुण कहना। समझ में आया? भगवान आत्मा... साँकली, साँकली कहते हैं न? क्या कहा? साँकली कहते हैं। यह दो-चार-पाँच हार डालते हैं न। साँकली, वह आत्मा, उसमें जो कड़ी, वे उसके प्रदेश और उसमें पीलापन आदि है, वह उसके गुण। इसी प्रकार आत्मा साँकली समान असंख्यप्रदेशी, प्रत्येक प्रदेश में अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि असंख्य प्रदेश में भरे हुए हैं। समझ में आया? भगवान के धर्म में जैन में जन्मे, जैन को खबर नहीं। अब इसमें सच्चे-खोटे की परीक्षा कहाँ से हो? कि यह सत्य है, यह झूठ है, यह सत्य है। समझ में आया? **'सुधं तियलोय मंत निम्मलयं'** असंख्य प्रदेश भगवान के ध्रुव शुद्ध हो गये हैं सब। उसमें दृष्टान्त दिया है। कहो, समझ में आया?

दिस्टंति तिहुवनग्गं, दिस्टंतो ममल कम्म मुक्कं च।
जिनियं च तिविहि कम्मं, जिनयंतो अनिस्ट कम्मं बंधानं॥५०३॥

जो भव्य जीव तीन लोक के अग्रभाग में विराजित सिद्ध भगवान का स्वरूप मनन करते हैं और उस ही स्वरूप को देखने से कर्म छूट जाते हैं। वह सिद्धस्वरूप अपना, हों! सिद्ध का नहीं, अपना। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा शुद्धस्वरूप सिद्ध समान असंख्यप्रदेशी अत्यन्त अनन्त गुण का धाम पूर्ण निर्मल है, ऐसा देखते हैं, उसके कर्म छूट जाते हैं।

'जिनियं च तिविहि कम्मं,' जिसने जीते हैं, जिन अर्थात् जीते हैं, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म जीते हैं। भगवान ने तो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म हैं। भावकर्म का विकल्प जो दया, दान, वह भावकर्म है, वह भगवान के पास नहीं है। यहाँ भी अपने स्वभाव में नहीं है। अपने स्वभाव की दृष्टि करने में वह भाग है नहीं। **'जिनयंतो अनिस्ट कम्मं'** और अनिष्ट कर्म का बन्ध नहीं होता। समझ में आया? **कर्म को जीता जाता है।** दो बातें लीं। एक तो नये नोकर्म जीते जाते हैं और अनिष्ट कर्म का बन्ध नहीं होता। जीते जाते हैं अर्थात् निर्जरा होती हे और नये कर्म का बन्ध नहीं होता। संवर होता है। जो ऐसे सिद्धस्वभाव सन्मुख की दृष्टि करता है, उसके पुराने कर्म झरते हैं, नये कर्म आते नहीं। संवर-निर्जरा दो ली है। समझ में आया? पश्चात् जरा लिया। बस, समय हो गया है।

सिद्ध भगवान का ध्यान करने से संवर भी होता और निर्जरा भी होती है। देखो, लिखा है भाई ने। **मोक्ष का मार्ग शुद्ध स्वरूप का...** देखो, संवर और निर्जरा, वह मोक्ष का मार्ग है। जो अन्तर में शुद्ध स्वभाव पुण्य-पाप के राग से रहित श्रद्धा, ज्ञान और रमणता से नये कर्म बँधते नहीं, पुराने कर्म झरते हैं। नये नहीं बँधते, वह संवर; पुराने झरते हैं, वह निर्जरा। इसका नाम भगवान यहाँ मोक्षमार्ग है न भाई! मोक्षमार्ग। इससे संवर, निर्जरा और मोक्ष (लिये हैं)। सात तत्त्व में संवर, निर्जरा, वह मोक्षमार्ग है। आस्रव और बन्ध संसारमार्ग है। सात तत्त्व के अन्दर, जीव और अजीव दो द्रव्य हैं। समझ में आया? और मोक्ष तो पर्याय है। संवर-निर्जरा की फलरूप पर्याय है। इन सातों तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा, तत्त्वार्थश्रद्धा निश्चय अनुभवसहित, हों! उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं और उससे अनिष्ट कर्म का बन्ध नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)